प्राकृत-जैन कथा-साहित्य का महत्त्व

सुधा खाब्या

मानव प्रारम्भ से ही कथा-प्रेमी रहा है। भारतीय साहित्य का अधिकांश भाग कथा-साहित्य है जिसमें एक से एक सुन्दर कथाएं वर्णित हैं। इस साहित्य में जहां लोक-संस्कृति, लोक-जीवन आदि की झलक देखने को मिलती है वहां तत्कालीन बोल-चाल की भाषा का आस्वादन भी प्राप्त होता है। बच्चे से लेकर वृद्ध तक सभी के लिए यह मनोरंजक एवं ज्ञानवर्धक है क्योंकि इनको समझने में मानसिक कसरत की आवश्यकता नहीं होती, ये सहज रूप से समझ में आ जाती हैं। विश्व के सम्पूर्ण साहित्य का अधिकांश भाग कथा-साहित्य के रूप में है। लौकिक साहित्य के क्षेत्र में ही नहीं, अपितु धार्मिक साहित्य के क्षेत्र में भी कथा-साहित्य की बहुलता है। जैन साहित्य का लोक-दृष्टि से सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण साहित्य कथा-साहित्य ही है।

जैन धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए जैनाचार्यों ने नीति-कथाओं की परम्परा का प्रारम्भ किया। भारतीय लोक-कथा साहित्य में भी प्राकृत-कथा-साहित्य का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इनके विषयों में मौलिकता है तथा ये भौतिकता से आध्यात्मिकता की ओर ले जाती हैं जिससे वैराग्य भावना एवं सदाचार का विकास होता है। ये कथाएं ऐसा मनोवैज्ञानिक प्रभाव डालती हैं जिससे मानव वैसा ही करने के लिए प्रेरित होता है। जीवन के उतार-चढ़ावों एवं पुनर्जन्मों का वर्णन जैनाचार्यों द्वारा कथा के माध्यम से इस ढंग से किया जाता है जिसे सुनते ही व्यक्ति संसार को असार समझने लगता है। तात्पर्य यह है कि कथाविचारों को अभिव्यक्त करने की ऐसी विधा है जिससे कथा कहने वाला व्यक्ति श्रोता पर अपनी इच्छानुसार प्रभाव डालने में सफल हो जाता है। जगन्नाथप्रसाद शर्मा ने अपनी पुस्तक 'कहानी का रचना-विधान' में कथा की सर्वजनप्रियता के कारण में कहा है—"साहित्य के माध्यम से डाले जाने वाले जितने प्रभाव हो सकते हैं; वे रचना के इस प्रकार में अच्छी तरह से उपस्थित किए जा सकते हैं। चाहे सिद्धान्त प्रतिपादन अभिप्रेत हो, चाहे चरित्र-चित्रण की सुन्दरता इष्ट हो, चाहे किसी घटना का महत्त्व निरूपण करना हो अथवा किसी वातावरण की सजीवता का उद्घाटन ही लक्ष्य हो या क्रिया का वेग अंकित करना हो या मानसिक स्थिति का सूक्ष्म विश्लेषण करना हो—सभी कुछ इसके द्वारा संभव है।"

कथा-साहित्य का प्रारम्भ कब से हुआ यह बताना उतना ही कठिन है जितना यह बताना कि मानव का जन्म कब हुआ। फिर भी विद्वानों ने इसके प्रारम्भ को जानने का प्रयत्न किया है। डॉ॰ याकोबी ने इसके उद्भव को बताते हुए लिखा है कि कथा-साहित्य का उद्भव ईसा की प्रथम शताब्दी पश्चात् के उत्तरार्द्ध में माना जाता है।

प्राकृत-कथा-साहित्य का प्रारम्भ

प्राकृत-कथा-साहित्य का मूल हमें आगम ग्रन्थों में उपलब्ध होता है। जैन सिद्धान्तों के प्रसार के लिए सुन्दर एवं प्रेरणास्पद अंग व उपांग साहित्य में प्राप्त होते हैं। इसमें ऐसे अनेक आख्यान हैं जो मानव के नैतिक, सामाजिक एवं धार्मिक जीवन को ऊंचा उठाने में सहायक हैं। निर्युक्ति, चूर्णि आदि व्याख्या साहित्य में सैंकड़ों शिक्षाप्रद आख्यान हैं जिनके माध्यम से दर्शन, सिद्धान्त एवं तत्त्व सम्बन्धी गूढ़ समस्याओं को बहुत अच्छे ढंग से सुलझाया गया है।

आगम-साहित्य में प्राकृत कथाओं का बीज विद्यमान है किन्तु इसमें कथाओं का विस्तार नहीं है। जिस प्रकार बोने के बाद खाद-पानी आदि पर्याप्त मात्रा में देने पर बीज धीरे-धीरे वृक्ष का रूप धारण करता है, उसी प्रकार प्राकृत कथाओं का बीज आगम-साहित्य रूपी भूमि में बोया गया है जो कि धीरे-धीरे घटना, पात्र, कथोपकथन, शील निरूपण के लिए आवश्यक वातावरण आदि की संयोजना करने पर चूर्णि, भाष्य, टीका आदि साहित्य के रूप में विस्तृत हुआ है। जैनागमों में दर्शन के विभिन्न सिद्धान्तों को स्पष्ट करने के लिए छोटी-बड़ी कई कथाओं का सहारा लिया गया है। इन आगम-ग्रन्थों में ऐसे अनेक दृष्टान्त, रूपक आदि प्रयुक्त हुए हैं जो कि आगे चलकर प्राकृत कथा-साहित्य को पुष्पित एवं पल्लवित करने में सहायक हुए हैं। प्राकृत कथा साहित्य की दृष्टि से नायाधम्म कहा, उवासग दसाओ, विपाक सूत्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आदि आगम ग्रन्थ विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। इनमें कथाएं उपमा, प्रतीक आदि के रूप में ग्रथित हैं जिससे हम कह सकते हैं कि प्राकृत कथा साहित्य की उत्पत्ति उपमा, प्रतीक, संवाद, दृष्टान्त, रूपक आदि के रूप में हुई।

प्राकृत-कथा-साहित्य के विकास का दूसरा चरण आगमों पर लिखा गया टीका-साहित्य है। इस युग को टीका-युग कहा जाता है। इसमें आगमों में उल्लिखित उपमाओं को पूर्ण कथाओं का रूप दिया गया है। आगम में कथाएं 'वण्णओ' से बोझिल थीं किन्तु टीका-युग में यह प्रवृत्ति नहीं रही तथा कथाओं के सुन्दर वर्णन होने लगे एवं एकरूपता का स्थान विविधता एवं नवीनता तथा संक्षेप का स्थान विस्तार ने ले लिया। इस युग में कथा का परिवेश धीरे-धीरे विस्तृत होता गया क्योंकि कथा का रूप वातावरण एवं आवश्यकता पर आधारित होता है। ये कथाएं आवश्यक भाष्य या व्याख्या के सिलसिले में नीति-विचार या तथ्य की पुष्टि के रूप में ग्रहण की गई हैं। टीका-साहित्य की कथाओं में धीरे-धीरे रस का समावेश भी हो गया। डॉ० विण्टरनित्स ने अपने ग्रन्थ 'ए हिस्ट्री ऑफ इण्डियन लिट्रेचर' में कहा है—"प्राचीन भारतीय कथा-शिल्प के अनेक रत्न जैन टीकाओं में कथा-साहित्य के माध्यम से हमें प्राप्त होते हैं। टीकाओं में यदि इन्हें सुरक्षित न रखा जाता तो ये लुप्त हो गए होते। जैन-साहित्य ने असंख्य निजंधरी कथाओं के ऐसे भी मनोरंजक रूप सुरक्षित रखे हैं जो दूसरे स्रोतों से जाने जाते हैं।" आगम टीका-साहित्य में व्यवहार भाष्य, बृहत् कल्प भाष्य, उत्तराध्ययन टीका तथा अन्य निर्युक्ति, चूर्णि, भाष्य साहित्य में अनेक प्राकृत कथाएं प्राप्त होती हैं।

प्राकृत-कथाओं के भेद

मोटे तौर पर कथा-साहित्य को दो भागों में बांटा जाता है—१. लोक-कथा साहित्य, २. अभिजात्य कथा-साहित्य। लोक-कथाओं में लोक-मानस, लोक-जीवन आदि की स्वाभाविक अभिव्यक्ति रहती है। लोक-कथाएं लोक-भाषा में निबद्ध होने के कारण तथा जनसाधारण से सम्बन्धित होने के कारण लोगों को अपनी ओर शीघ्र ही आकृष्ट कर लेती हैं। इनमें लोक-तत्त्वों एवं विश्वासों का वर्णन होता है। अभिजात्य कथाएं मिश्रित, सुसंस्कृत तथा उच्चस्तरीय समाज से सम्बन्धित होती हैं। ये न तो जनसामान्य से सम्बन्धित होती हैं न ही जन-भाषा में निबद्ध होती हैं। ये परिष्कृत भाषा में लिखी जाती हैं। संस्कृत भाषा में निबद्ध कथाएं अभिजात्य वर्ग से सम्बन्ध रखती हैं। इनमें जनसाधारण का चित्रण नहीं होता।

प्राकृत कथाएं लोक-कथाओं में आती हैं। इनकी भाषा जन-भाषा है। इनके पात्र समाज के मध्यम या निम्नवर्गीय हैं। ये जन-सामान्य से जुड़ी हुई हैं। इनमें मानव को अपने ही प्रयत्नों से सिद्ध बनने की प्रेरणा दी गई है। कोई भी व्यक्ति एक भव में मुक्त नहीं होता। अत: इनमें जन्म-जन्मान्तरों, अच्छे-बुरे कर्मों के फल, आत्म-शुद्धि, व्रत-साधना, तपश्चरण आदि का चित्रण किया गया है। मुक्ति प्राप्त करने के लिए कई जन्मों तक प्रयत्न करना पड़ता है। वैर-विरोध आदि का फल जन्मान्तरों तक भोगना पड़ता है।

प्राकृत आगम एवं टीका-साहित्य में मात्र कथाओं का ही नहीं, अपितु कथाओं के स्वरूप का भी निरूपण किया गया है। 'दशवैकालिक' में सामान्य कथा के भेद बताते हुए कहा गया है कि—

"अकहा कहा य विकहा हविज्ज पुरिसंतरं पप्प।"

कथाएं तीन प्रकार की होती हैं—अकथा, कथा एवं विकथा। मिथ्यात्व के उदय से अज्ञानी व्यक्ति जिस कथा का उल्लेख करता है वह अकथा है। जिस कथा में तप, संयम, ध्यान आदि का निरूपण होता है वह सत्कथा है तथा जिसमें प्रमाद, कषाय, राग-द्वेष आदि समाज को विकृत करने वाली कथाएं हों वह विकथा है। प्राकृत साहित्य में सत्कथा को ही अपनाया गया है।

प्राकृत कथा-साहित्य के विभिन्न रूपों को देखते हुए इसे वर्ण्य-विषय, पात्र, शैली एवं भाषा की दृष्टि से अनेक भागों में बांटा गया है—

१. **वर्ण्य विषय की दृष्टि से**—वर्ण्य विषय की दृष्टि से दशवैकालिक सूत्र में कथाओं को चार भागों में बांटा गया है—

"अत्थकहा कामकहा धम्मकहा चेव मीसिया य कहा।
एत्तो एक्केक्काबि य णेगविहा होइ णायव्वा॥" (गा. ११८)

अर्थात् अर्थकथा, कामकथा, धर्मकथा और मिश्रित कथा—इन चारों प्रकारों की कथाओं में से प्रत्येक प्रकार की कथाओं के अनेक भेद हैं।

समराइच्चकहा में भी इन्हीं भेदों को मानते हुए कहा है—

"तं जहा—अत्थकहा, कामकहा, धम्मकहा संकिण्ण कहा य।" (पृ० २)

जम्बूदीव पण्णत्ति में भी कहा है—

"अत्थकहा कामकहा धम्मकहा वह य संकिन्ना।" (जंबू० प० उ० गा० २२)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२. **पात्रों के प्रकारों की दृष्टि से**—इस आधार पर समराइच्चकहा में कथा के तीन भेद करते हुए कहा है—

"दिव्वं दिव्वमाणुसं माणुसं च।" (पृ० २)

अर्थात् दिव्य, दिव्यमानुष एवं मानुष ये तीन भेद हैं।

लीलावईकहा में भी कहा है—

"तं जह-दिव्वा तह दिव्वमाणुसीं माणुसीं तहच्चेय।" (गा० ३५)

३. **शैली के आधार पर**—उद्योतन सूरि ने कुवलयमाला कहा में शैली के आधार पर कथा के प्रकारों को अभिव्यक्त करते हुए कहा है—

"तओ पुण पंच कहाओ। तं जहा-सयलकहा, खंडकहा, उल्लावकहा, परिहासकहा।
तहावरा कहियत्ति-संकिण्णकहत्ति।" (पृ० ४, **अनुच्छेद** ७)

अर्थात् सकल कथा, खण्ड कथा, उल्लापकथा, परिहास कथा एवं संकीर्ण कथा।

४. **भाषा के आधार पर**—लीलावईकहा में भाषा के आधार पर स्थूल रूप से कथाओं के संस्कृत, प्राकृत, मिश्र—ये तीन भेद बताए गए हैं :—

"अण्णं सक्कय-पायय-संकिण्ण-विहा सुवण्ण-रइयाओ।
सुव्वंति महा-कइपुंगवेहिं विविहाउ सुकहाउ॥" (गा० ३६)

इस प्रकार प्राकृत-कथा के उपरोक्त प्रकार बताये गए हैं। प्राकृत भाषा में लिखित कथा-साहित्य विस्तार एवं गुण दोनों दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। इसमें कई कथाएं निबद्ध हैं। इनकी संख्या इतनी अधिक है कि एक स्थान पर इनका संकलन अत्यन्त कठिन ही नहीं, असम्भव-सा है।

प्राकृत के प्रमुख कथा-ग्रन्थ

आगम-साहित्य एवं टीका-साहित्य में प्राकृत कथा-साहित्य प्रारम्भ हो चुका था तथा उसने अपना स्वरूप भी निश्चित कर लिया था। यद्यपि ये कथाएं विशिष्ट उद्देश्य को ध्यान में रखकर लिखी गईं किन्तु उनमें कथा के सभी तत्त्व प्राप्त होते हैं। डॉ० नेमिचन्द शास्त्री एवं डॉ० जगदीशचन्द्र जैन ने अपनी पुस्तकों में इस पर विस्तार से प्रकाश डाला है।

प्राकृत कथा-साहित्य के अन्तर्गत अनेक स्वतंत्र ग्रन्थ ईसा की प्रथम शती से लेकर आधुनिक युग तक लिखे गए, जिन्हें तीन भागों में बांटा गया है और जिनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

१. हरिभद्रपूर्व-युगीन स्वतंत्र प्राकृत-कथा-साहित्य

इस साहित्य से हमारा अभिप्राय उस कथा-साहित्य से है जो हरिभद्र के पूर्व लिखा गया। इसका समय प्रथम शताब्दी से लेकर आठवीं शताब्दी के मध्य का है। इस युग के प्रमुख ग्रन्थ इस प्रकार हैं—

(क) **तरंगवई**—यह एक प्राचीन कृति है। इसके रचयिता पादलिप्त सूरि हैं। यह कथाग्रन्थ आज अनुपलब्ध है। इसका संक्षिप्त रूप तरंगलोला के नाम से प्राप्त होता है। इसका समय विक्रम संवत् १५१ से २१९ के मध्य है।

(ख) **वसुदेव हिण्डी**—भारतीय कथा-साहित्य में ही नहीं विश्व कथा-साहित्य में भी इसका महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह दो खण्डों में विभक्त है। प्रथम खण्ड के रचयिता संघदास गणि एवं द्वितीय के रचयिता धर्मदास गणि हैं। इसका समय तीसरी शताब्दी है।

२. हरिभद्रयुगीन प्राकृत कथा-साहित्य

इसे पूर्व से चली आती कथा-परम्परा का संघात युग भी कहते हैं। इस युग के प्रमुख कथाकार हरिभद्र हैं। इन्होंने छोटी-छोटी रचनाओं के अतिरिक्त दो विशालकाय कथाग्रन्थों की रचना भी की है। इस युग के प्रमुख कथाग्रन्थ निम्न हैं—

(क) **समराइच्चकहा**—यह धर्म-कथा है। इसके रचयिता हरिभद्र सूरि हैं, जिनका समय ७३० से ८३० ईस्वी माना जाता है। इसमें समरादित्य के नौ भवों की कथा वर्णित है।

(ख) **धूर्ताख्यान**—इसके रचयिता भी हरिभद्र सूरि हैं। व्यंग्य-प्रधान कथा-साहित्य में यह प्रथम कृति है। इसमें रामायण आदि की असंगत बातों पर व्यंग्य है।

(ग) **लीलावईकहा**—प्रेमाख्यानक आख्यायिका में इसका स्थान महत्त्वपूर्ण है। इसके रचनाकार महाकवि कोअहल हैं। इसका रचनाकाल ८वीं शताब्दी है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३. हरिभद्रउत्तरयुगीन प्राकृत-कथा-साहित्य

हरिभद्र के पश्चात् प्राकृत-कथा-साहित्य निरन्तर विकास के मार्ग पर बढ़ता गया तथा नाना रूपों को ग्रहण कर समृद्ध रूप में प्रतिष्ठित हुआ। इस युग की प्रमुख कृतियां निम्न हैं—

(क) **कुवलयमालाकहा**—इसकी रचना आचार्य हरिभद्र के शिष्य उद्योतन सूरि ने की। इनका समय ८वीं शताब्दी है। यह कथा साहित्यिक स्वरूप की दृष्टि से चम्पू विधा के अन्तर्गत आती है, यद्यपि यह एक कथा-ग्रन्थ है। इसमें पांच कषायों—काम, क्रोध, मान, माया, लोभ—को पात्र रूप में उपस्थित किया गया है।

(ख) **निव्वाण लीलावईकहा**—जिनेश्वर सूरि ने इसकी रचना वि० सं० १०८० और १०९५ के मध्य की। इसका मूल रूप अनुपलब्ध है, संस्कृत में संक्षिप्त रूप प्राप्त होता है।

(ग) **कहाकोसपगरण**—इसके रचयिता भी जिनेश्वर सूरि हैं जिन्होंने वि० सं० ११०८ में इसकी रचना की।

(घ) **संवेग रंगशाला**—जिनेश्वर सूरि के शिष्य जिनचन्द्र सूरि इस कथा-ग्रन्थ के रचयिता हैं। इसकी रचना वि० सं० ११२५ में की गई।

(ङ) **णाणपंचमीकहा**—वि० सं० ११०९ से पूर्व महेश्वर सूरि ने इसकी रचना की।

(च) **कहारयणकोस**—इस ग्रन्थ की रचना वि० सं० ११५८ में की गई। इसके रचयिता देव भद्रसूरि या गुणचन्द्र हैं।

(छ) **नम्मया सुन्दरीकहा**—महेन्द्रसूरि ने वि० सं० ११८७ में इसकी रचना की।

(ज) **कुमारवाल वडिबोह**—चारित्रिक निष्ठा को जाग्रत करने के लिए सोमप्रभ सूरि ने इस कथा-ग्रन्थ की रचना की। इसका रचना-काल वि० सं० १२४१ है।

(झ) **आख्यानमणिकोस**—इसमें लघु कथाओं का संकलन किया गया है। इसके रचयिता नेमिचन्द सूरि हैं। आम्रदेव सूरि ने ईस्वी सन् ११३४ में इस पर टीका लिखी।

(ञ) **जिनदत्ताख्यान**—इसके रचनाकार आचार्य सुमति सूरि हैं जिन्होंने इसकी रचना वि० सं० १२४६ से पूर्व की।

(ट) **सिरिसिरिवालकहा**—इसके रचयिता रत्नशेखर सूरि हैं। इसका रचना-काल वि० सं० १४२८ है।

(ठ) **रयणसेहरनिवकहा**—जिनहर्ष सूरि ने चित्तौड़ में वि० सं० १४८७ में इसकी रचना की। यह जायसी के पद्मावत का पूर्व रूप है। इसमें पर्व की तिथियों पर किये गये धर्म का फल वर्णित है।

(ड) **महिवालकहा**—इसके रचयिता वीरदेव गणि ने इस कथा-ग्रन्थ की रचना १५वीं शताब्दी के मध्य में की।

(ढ) **पाइअकहासंगहो**—पद्मचन्द्र सूरि के अज्ञात नामा शिष्य ने इस ग्रन्थ की रचना की, जिसका समय वि० सं० १३९८ से पूर्व का है।

इन उपरोक्त कथा-ग्रन्थों के अतिरिक्त भी कई कथा-ग्रन्थ प्राकृत भाषा में रचे गये। उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि प्राकृत-कथा-साहित्य पर्याप्त समृद्ध है। यह भारतीय कथा-साहित्य के इतिहास के लिए महत्त्वपूर्ण कड़ी है।

प्राकृत-कथा-साहित्य का महत्त्व

रचनाओं की दृष्टि से प्राकृत कथा-साहित्य जितना विशाल है उसमें शैली एवं विषय-वैविध्य भी उतना ही है। प्राकृत-कथा-साहित्य प्राचीन सामाजिक, सांस्कृतिक, भाषा, कला आदि का एक अक्षय कोश है जिसमें भाषा, कला, साहित्य, संस्कृत, भूगोल आदि से सम्बन्धित जो सामग्री उपलब्ध होती है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। ज्यों-ज्यों हम इस साहित्य का मन्थन करते हैं त्यों-त्यों हमें इसमें से एक से एक अमूल्य एवं अलभ्य रत्नों (सामग्री) की उपलब्धि होती है। प्राकृत-कथा-साहित्य का महत्त्व संक्षिप्त रूप से इस प्रकार है—

१. **प्रेमकथाओं के विकास का आधार**—प्राकृत कथाओं से ही अन्य—संस्कृत, अपभ्रंश, हिन्दी—भाषाओं में प्रेम-कथाओं का विकास हुआ। 'नायाधम्मकहाओ' में मल्ली का एक आख्यान मिलता है जिससे छः राजकुमार प्रेम करते हैं। 'तरंगवती' प्रेमाख्यानक काव्य में चित्र के माध्यम से प्रेमी की प्राप्ति होती है। 'लीलावईकहा' भी एक उत्कृष्ट प्रेम-कथा है। 'रयणसेहरनिवकहा' भी एक सुन्दर प्रेम-कथा है जो कि पद्मावत का पूर्व रूप है। इनके अतिरिक्त निर्युक्ति, टीका, भाष्य, चूर्णि आदि में एक से एक सुन्दर कथाएं निबद्ध हैं जिनके आधार पर पंचतंत्र इत्यादि लिखे गये। इन कथाओं में प्रेम का उदय स्वप्न-दर्शन, चित्र-दर्शन, रूप-श्रवण, गुण-श्रवण आदि के द्वारा दिखाया गया है। सामान्यतः इन कथा-काव्यों के नायक एवं नायिका उच्चवर्गीय न होकर मध्यवर्गीय हैं।

२. **चम्पूकाव्य के स्वरूप का प्रतिनिधि**—गद्य-पद्य मिश्रित काव्य को चम्पूकाव्य कहते हैं। इसमें भावों का निरूपण पद्य एवं विचारों का निरूपण गद्य में किया जाता है जिनका सम्बन्ध क्रमशः हृदय एवं मस्तिष्क से है। प्राकृत-कथा-साहित्य की अधिकांश कृतियों में यह गुण विद्यमान है। प्राप्त कथा-ग्रन्थों में कथाओं को प्रभावोत्पादक बनाने के लिए कथाकारों ने गद्य में पद्य एवं पद्य में गद्य का मिश्रण किया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संस्कृत में चम्पू विधा का प्रारम्भ भी प्राकृत कथा-काव्यों से मानना न्यायसंगत है क्योंकि संस्कृत में मदालसा चम्पू एवं नल चम्पू के पूर्व कोई भी चम्पू काव्य उपलब्ध नहीं है। यद्यपि दण्डी ने चम्पू का उल्लेख किया है किन्तु प्राकृत में दण्डी से पूर्व भी गद्य-पद्य मिश्रित कथाएं उपलब्ध होती हैं। इनका अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि दण्डी ने भी चम्पू की परिभाषा इन्हीं के आधार पर दी है। तरंगवती, समराइच्चकहा, कुवलयमालाकहा, कहाकोस पगरण, संवेग रंगशाला, णाणपंचमीकहा, *कहारयणकोस, रयणचूडारायचरियं, जिनदत्ताख्यान, रयणसेहरनिव-*कहा आदि प्राकृत कथाएं गद्य-पद्य मिश्रित हैं। इससे ज्ञात होता है कि चम्पू काव्य की दृष्टि से भी प्राकृत-कथा-साहित्य महत्त्वपूर्ण है तथा संस्कृत, अपभ्रंश, हिन्दी आदि अन्य भाषाओं के लिए उपजीव्य रहा है।

३. **प्रतीक काव्य का मूल**—प्रतीक काव्य की दृष्टि से प्राकृत-कथा-साहित्य में महत्त्वपूर्ण सामग्री प्राप्त होती है। प्रतीक रूप में धार्मिक शिक्षा प्राकृत कथा काव्य की ही देन है। इसमें कथा के पात्र प्रतीक रूप में होते हैं। जैसे 'कुवलयमालाकहा' के पात्र क्रोध, मान, माया, लोभ व मोह हैं। इन चार भवों की कथा द्वारा इन कषायों के दुष्परिणामों का विस्तार से वर्णन किया गया है। कहीं-कहीं कथा के अन्त में प्रतीकों की सैद्धान्तिक व्याख्या की गई है जैसे 'वसुदेवहिण्डी' का इब्यपुत्तकहाणग। इस प्रकार ज्ञाता धर्म कथा, सूत्र कृतांग, ठाणांग आदि आगम ग्रन्थों से लेकर कुवलयमालाकहा, वसुदेवहिण्डी आदि कथा-काव्य प्रतीक-काव्य की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। इन्हीं के आधार पर प्रतीक काव्यों का विकास हुआ।

४. **व्यंग्यप्रधान काव्य का प्रणेता**—व्यंग्य-प्रधान काव्य प्राकृत-कथा-साहित्य की देन है। प्रथम व्यंग्यप्रधान काव्य धूर्ताख्यान है जिसमें रामायण, महाभारत, पुराण आदि की असम्भव एवं अविश्वसनीय बातों पर तीव्र एवं तीखा व्यंग्य करते हुए उनका प्रत्याख्यान किया गया है। यह प्राकृत-कथा-साहित्य की अनुपम कृति है। इसमें अनाचार पर व्यंग कर सदाचार की ओर मानव को प्रवृत्त किया गया है।

५. **लोकतत्त्व से समृद्ध**—साहित्य का सम्बन्ध जन-साधारण से बना रहे, इसके लिए प्राकृत कथाकारों ने जो कुछ भी कहा है, जन-साधारण से सम्बन्धित है एवं उन्हीं की भाषा में कहा है। इसीलिए लोक-कथा के सभी तत्त्व इसमें विद्यमान हैं। प्राकृत कथाकारों का मूल उद्देश्य जन-सामान्य के जीवन को उत्तरोत्तर ऊंचा उठाना है इसीलिए इसमें लोक-कथाओं को प्रचुर मात्रा में ग्रहण किया गया है। प्रारम्भ से ही प्राकृत कथाओं में लोक-कथाओं का प्रयोग किया गया है। प्राकृत कथा-साहित्य को लोक-कथाओं का सागर कहा जाय तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। लोक-कथाओं के प्रसार में इसका महत्त्वपूर्ण योगदान है। पैशाची भाषा में गुणाढ्य द्वारा रचित 'बृहत्कथा' लोक-कथाओं का विश्वकोश है। टीका-युग की कथाओं में लोक-कथा के तत्त्व प्रचुर परिमाण में मिलते हैं। 'आवश्यक चूर्णि' में लालच बुरी बलाय, पण्डित कौन, चतुराई का मूल्य, पढ़ो और गुनो आदि कथाएं; 'दशवैकालिक चूर्णि' में ईर्ष्या मत करो, गीदड़ की राजनीति इत्यादि कथाएं; 'व्यवहार भाष्य' की भिखारी का सपना आदि कथाएं लोक-कथाओं के सुन्दर नमूने हैं।

स्वतंत्र प्राकृत कथाओं में भी लोक-कथाओं का प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया गया है जैसे वसुदेवहिण्डी में शीलवती, धनश्री, विमलसेना आदि की कथाएँ। इसके अतिरिक्त तरंगवती, समराइच्चकहा, ज्ञानपंचमी कहा, रत्नशेखर कहा आदि कथा-साहित्य लोक-कथाओं से भरा पड़ा है।

६. **कथानक रूढ़ियां**—प्राकृत-कथा-साहित्य कथानक रूढ़ियों की दृष्टि से भी समृद्ध है। इसमें कई कथानक रूढ़ियों का प्रयोग किया गया है। 'हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास' नामक पुस्तक में प्राकृत-कथा-साहित्य के महत्त्व को बतलाते हुए कहा गया है कि—"अपभ्रंश तथा प्रारम्भिक हिन्दी के प्रबन्ध काव्यों में प्रयुक्त कई लोक कथात्मक रूढ़ियों का आदिस्रोत प्राकृत कथा साहित्य ही रहा है। पृथ्वीराज रासो आदि आदिकालीन हिन्दी काव्यों में ही नहीं बाद के सूफी प्रेमाख्यानक काव्यों में भी ये लोककथात्मक रूढ़ियां व्यवहृत हुई हैं तथा इन कथाओं का मूल स्रोत किसी न किसी रूप में प्राकृत-कथा-साहित्य में विद्यमान है।" कथानक रूढ़ियों का प्रयोग प्रायः सभी प्राकृत कथा-ग्रन्थों में किया गया है। कुछ कथानकरूढ़ियां द्रष्टव्य हैं जैसे काल्पनिक रूढ़ियां, तंत्र-मंत्र सम्बन्धी रूढ़ियां, पशुपक्षी सम्बन्धी रूढ़ियां इत्यादि।

७. **कथाकल्प**—*प्राकृत-कथा-साहित्य भारतीय जनता के प्रत्येक वर्ग के अचार-विचार-व्यवहार का यथार्थ एवं विस्तार से वर्णन* करता है। किसी कथा का नायक मध्यमवर्गीय परिवार का है तो किसी का निम्नवर्गीय। इनमें जिस प्रकार राजा-महाराजाओं का वर्णन है उसी प्रकार सेठ-साहूकार, जुआरी, चोर इत्यादि का भी।

८. **पशु-पक्षी की कथाओं का मूलाधार**—सर्वप्रथम प्राकृत-कथा-साहित्य में पशु-पक्षी-कथाएं प्राप्त होती हैं। आगम-युग से ही प्राकृत में पशु-पक्षी कथाएं मिलती हैं। 'नायाधम्म कहाओ' में कुएं का मेढ़क, दो कछुए आदि कई पशु-पक्षी कथाएं हैं जिनके माध्यम से आचार व धर्म के उपदेश दिये गये हैं। निर्युक्तियों, टीकाओं, भाष्यों आदि में भी पशु-पक्षी कथाएं मिलती हैं। तरंगवती, रत्नशेखर कथा, कहा-कोश प्रकरण, कुवलयमालाकहा आदि कथा ग्रन्थों में पशु-पक्षी सम्बन्धी कथाएं ग्रहण की गई हैं। डॉ० ए० बी० कीथ ने 'संस्कृत साहित्य का इतिहास' नामक पुस्तक में कहा है कि "पशु कथा क्षेत्र में प्राकृत की पूर्व स्थिति के पक्ष की पुष्टि में और भी कम कहा जा सकता है।"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संस्कृत-साहित्य में पशु-पक्षी कथाएं गुप्त साम्राज्य के बाद रची गईं। अतः कहा जा सकता है कि पंचतंत्र आदि में पशु-पक्षी कथाएं प्राकृत-कथा-साहित्य से ही ग्रहण की गई हैं।

९. **भौगोलिक सामग्री से भरपूर**—प्राकृत-कथा-साहित्य में भौगोलिक ज्ञान का भण्डार भरा पड़ा है जिसका आधार जैन साहित्य है। प्राकृत-कथा-साहित्य में जो भौगोलिक उल्लेख प्राप्त होते हैं उनका क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। इनमें बिहार, राजस्थान, आसाम, मालव, गुर्जरदेश, लाट, वत्स, सिन्ध, सौराष्ट्र, महिला राज्य आदि जनपदों का उल्लेख है। इनके अतिरिक्त जम्बूद्वीप, चीनद्वीप, सिंहलद्वीप, स्वर्ण-द्वीप, महाकटाह, स्वर्णभूमि, महाविदेह क्षेत्र, रत्नद्वीप आदि द्वीपों का उल्लेख किया गया है। नगरों में अयोध्या, वाराणसी, प्रभास, हस्तिनापुर, राजगृह, मिथिला, पाटलिपुत्र, प्रतिष्ठान आदि का उल्लेख कुवलयमालाकहा में प्राप्त होता है। कुवलयमालाकहा भौगोलिक साहित्य का महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। इनके अतिरिक्त अटवी, वृक्ष, पर्वत आदि के उल्लेख भी प्राप्त होते हैं। समरादित्यकथा, धूर्ताख्यान, नर्मदासुन्दरी कथा, वसुदेव हिण्डी आदि कथा-ग्रन्थों में प्रचुर मात्रा में भौगोलिक सामग्री प्राप्त होती है।

१०. **सांस्कृतिक महत्त्व**—तत्कालीन राजतन्त्र एवं शासन-व्यवस्था की जानकारी के लिए प्राकृत-कथा-साहित्य महत्त्वपूर्ण है। राजा का चुनाव, मन्त्री परिषद् का चुनाव, शासन-व्यवस्था, उत्तराधिकार आदि का विस्तृत वर्णन प्राकृत-कथा-साहित्य में प्राप्त होता है। समस्त राज-कार्य मन्त्री-मण्डल की सहायता से होता था। देश व नगर की सुरक्षा के लिए महासेनापति एवं सेना की व्यवस्था होती थी। इनके अतिरिक्त महा-पुरोहित, कन्या अन्तःपुर पालक, अन्तःपुर महत्तरिका आदि राज कर्मचारियों की नियुक्ति होती थी। राज-सभा में बड़े-बड़े विद्वानों को स्थान प्राप्त था। दूसरे देश के आक्रमण से सुरक्षा के लिए सेना को विभिन्न शस्त्रास्त्रों—असि, कत्तिय, करवाल आदि—को चलाने की पूर्ण शिक्षा दी जाती थी। कुवलयमालाकहा, समरादित्यकथा आदि कथा-ग्रन्थों में तत्कालीन युद्ध-प्रणाली, शासन-व्यवस्था आदि पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है। जनता की सुरक्षा का पूरा ध्यान रखना राजा का कर्त्तव्य था। अपराधियों को कठोर दण्ड दिया जाता था। समरादित्य कथा में चोर की सजा का उल्लेख है जिससे ज्ञात होता है कि चोर के शरीर पर कालिख लगाकर डिंडिमनाद के साथ तथा घोषणा करते हुए वध्य-स्थल की ओर ले जाया जाता था।

११. **सामाजिक जीवन**—प्राकृत कथाओं में प्रायः मध्यमवर्गीय पात्रों के जीवन को प्रस्तुत किया गया है। प्राकृत-कथा-साहित्य में प्रायः संयुक्त परिवारों का ही चित्रण प्राप्त होता है। परिवार के सभी सदस्य साथ रहते थे। स्त्रियां गृहकार्य करती थीं। गरीब एवं मध्यमवर्गीय परिवारों के सजीव और यथार्थ अभावों, कठिनाइयों आदि का जैसा चित्रण प्राकृत-कथा-साहित्य में है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। ज्ञानपंचमी कथा में भी दरिद्र व्यक्ति की दुःखी अवस्था का वर्णन किया गया है—

"गोट्ठी विसुट्ठ मिट्ठा दालिद्दविडंबियाण लोएहिं।
वज्जिज्जइ दूरेणं सुसलिलचंडाल कूवं व ॥"

जिसकी बात बहुत मधुर हो लेकिन जो दरिद्रता की विडम्बना से ग्रस्त है, ऐसे पुरुष का लोग दूर से ही त्याग कर देते हैं, जैसे मीठे जल वाला चाण्डाल का कुआं दूर से वर्जनीय होता है।

'कहारयणकोस' में भी दरिद्र व्यक्ति की मार्मिक स्थिति का चित्र खींचा गया है—

"परिगलइ मई मइलिज्जइ जसो नाऽदरंति सयणावि।
आलस्सं च पयट्टइ विप्फुरइ मणम्मि रणरणओ ॥
उच्छरइ अणुच्छाहो पसरइ सव्वंगिओ महादाहो।
किं किं व न होइ दुहं अत्थविहीणस्स पुरिसस्स ॥'

धन के अभाव में मति भ्रष्ट हो जाती है, यश मलिन हो जाता है, स्वजन भी आदर नहीं करते, आलस्य आने लगता है, मन उद्विग्न हो जाता है, काम में उत्साह नहीं रहता, समस्त अंग में महादाह उत्पन्न हो जाता है। अर्थविहीन पुरुष को कौन-सा दुःख नहीं होता?

कन्याओं का विवाह माता-पिता की इच्छा एवं स्वयंवर के माध्यम से किया जाता था। वर-कन्या के योग्य संयोग को ही महत्त्व दिया जाता था। रत्नशेखरकथा में इसका विस्तार से वर्णन किया गया है।

इनके अतिरिक्त प्राकृत-कथा-साहित्य पुत्र-जन्म, विवाह, धार्मिक अनुष्ठान आदि रीति-रिवाजों एवं वसन्तोत्सव, राज्याभिषेकोत्सव आदि पर्व-उत्सवों के वर्णनों से भरा पड़ा है। कुवलयमालाकहा, प्राकृतकथा संग्रह, समराइच्चकहा, कथाकोश प्रकरण, प्राकृत कथाकोश आदि कथा-ग्रन्थों में सामाजिक जीवन, रीति-रिवाज आदि का विस्तृत वर्णन है।

१२. **धर्म के विभिन्न आयाम**—प्राकृत-कथा-साहित्य धार्मिक दृष्टि से भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। प्रत्येक कथा धार्मिक कथा है। जैन धर्म के अतिरिक्त अन्य धर्मों के तत्त्वों का भी इनमें समावेश किया गया है। धार्मिक शिक्षा कथाओं के माध्यम से दी गई है जिससे आबालवृद्ध सभी धर्मों के स्वरूप व सिद्धान्तों को जान सकें तथा उनका प्रयोग कर सकें।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्राकृत कथा संग्रह में कर्म की प्रधानता बताते हुए कहा है—

"अहवा न दायव्वो दोसो कस्सवि केण कइयावि।
पुव्वज्जियकम्माओ हवंति जं सुक्खदुक्खाइं ॥"

अथवा किसी को कभी भी दोष नहीं देना चाहिए, पूर्वोपार्जित कर्म से ही सुख-दुःख होते हैं।

इसी प्रकार अन्य कथाओं में भी भिन्न-भिन्न कथाओं के माध्यम से धार्मिक सिद्धान्त, दर्शन, कर्मफल, पुनर्जन्म आदि के बारे में विस्तार से बताया गया है। तरंगवती, वसुदेव हिण्डी, समरादित्य कथा, कुवलयमाला कथा, रयणसेहरीकहा, ज्ञान पंचमी कथा आदि सभी कथा-ग्रन्थ धार्मिक हैं तथा जैन धर्म के मूलभूत सिद्धान्तों से भरपूर हैं। प्राकृत कथा साहित्य के आधार पर ही अन्य धर्मों में भी धार्मिक शिक्षा कथाओं के माध्यम से दी गई है।

विभिन्न भारतीय दर्शनों का उल्लेख भी इस कथा-साहित्य में हुआ है जैसे बौद्ध, चार्वाक, सांख्य, योग, मीमांसा, न्याय आदि दर्शनों के स्वरूप व सिद्धान्तों का विस्तार से वर्णन किया गया है। जैसे रत्नशेखर कथा में योग के स्वरूप पर प्रकाश डाला है। जैन दर्शन की सामग्री प्रचुर मात्रा में इस साहित्य में उपलब्ध होती है। जैसे—सात तत्त्व, अनेकान्तवाद, स्याद्वाद, अष्टकर्म आदि जैन दर्शन के प्रमुख सिद्धान्तों का विस्तार से उल्लेख किया है।

१३. **शिक्षा**—जीवन के हर क्षेत्र में शिक्षा की आवश्यकता है। शिक्षा के बिना कोई भी कार्य सही ढंग से नहीं हो पाता। प्राकृत कथाओं में भी स्थान-स्थान पर शिक्षा की पद्धति, विषय आदि का उल्लेख उपलब्ध होता है। स्त्री व पुरुषों के लिए शिक्षा की पूर्ण व्यवस्था थी। उस समय सहशिक्षा पद्धति थी। लड़के-लड़कियाँ साथ-साथ पढ़ते थे। शिक्षा मठ, गुरुकुल आदि में दी जाती थी। कुवलयमाला-कहा में इसका विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है। इसमें बताया है कि विद्यार्थियों को व्याकरण-शास्त्र, दर्शन-शास्त्र आदि सभी विशिष्ट कलाओं एवं शास्त्रों की शिक्षा दी जाती थी। ज्योतिष-शास्त्र, स्वप्न विद्या, सामुद्रिक-विद्या, निमित्तशास्त्र की शिक्षा भी दी जाती थी तथा ऐसे उल्लेख भी प्राप्त होते हैं जिनसे ज्ञात होता है कि बाहर से भी विद्यार्थी विद्याध्ययन के लिए आते थे। इसके अतिरिक्त समरादित्य कथा तथा अन्य कथा-काव्यों में भी शिक्षा के साधनों, विषयों आदि का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है। ज्ञान पंचमी कथा में पुस्तकों के महत्त्व को वर्णित किया है।

१४. **भाषा**—भाषा विचारों के आदान-प्रदान का साधन है। इसके माध्यम से हम अपने विचारों को लिख या बोलकर दूसरों पर प्रकट कर सकते हैं। प्राकृत जैन साहित्य में संस्कृत, अपभ्रंश, पुरानी हिन्दी, पुरानी गुजराती आदि के शब्द एवं उद्धरण स्थान-स्थान पर प्राप्त होते हैं। कुवलयमालाकहा में १८ देशों की बोलियों एवं भाषाओं का प्रयोग व्यापारियों की बातचीत के प्रसंग में किया गया है। इनके अतिरिक्त द्रविड़ भाषा, दक्षिणी भारतीय भाषा, राक्षसी एवं मिश्र भाषा आदि के स्वरूपों आदि का उल्लेख भी कथा में किया गया है। कुवलयमाला में लगभग २५० शब्द ऐसे प्रयुक्त किये गये हैं जो कि बिल्कुल नवीन हैं तथा शब्दकोश के लिए उपयोगी हैं। इस कथा के अतिरिक्त समरा इच्चकहा, वसुदेव हिण्डी आदि कथा-ग्रन्थ भाषा की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ हैं। यदि प्राकृत, संस्कृत आदि भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन किया जाय तो पता चलेगा कि प्राकृत शब्द ही संस्कृत, अपभ्रंश आदि में जाकर कितना बदल जाता है। शब्दों के अर्थ-परिवर्तन को समझने के लिए ये कथाएं महत्त्वपूर्ण हैं। देशी शब्दों के प्रयोग का भी बाहुल्य है।

यह साहित्य लोकोक्तियों, मुहावरों, कहावतों, सूक्तियों आदि से समृद्ध है। ज्ञानपंचमी कथा में प्रयुक्त लोकोक्ति देखिये—

"हत्थठियं कंकणयं को भण जोएह आरिसए।"

कहावतों का एक उदाहरण देखिये—

"मरइ गुडेणं चिय तस्स विसं दिज्जए किं व।"

सूक्तियों का आख्यानमणि कोश में एक उदाहरण दृष्टव्य है—

"किर कस्स थिरा लच्छी, कस्स जए सासयं पिए पेम्मं।
कस्स व निच्चं जीयं, भण को व ण खंडिओ विहिणा॥" (गा० ५५२)

१५. **समुद्र-यात्रा एवं वाणिज्य**—प्राकृत-कथा-साहित्य में समुद्र-यात्राओं एवं वाणिज्य का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है। प्राकृत कथा के पात्र अधिकांशतः मध्यमवर्गीय तथा सेठ-साहूकार आदि हैं जिनका व्यापार देशान्तरों तक फैला हुआ था। व्यापारी लोग समुद्र-मार्ग से स्वर्णद्वीप, सिंहल द्वीप आदि स्थानों पर जाते थे तथा व्यापार करते थे एवं विपुल धन कमाकर लाते थे। समराइच्चकहा, कुवलयमालाकहा, नम्मयासुन्दरीकहा, णाण-पंचमीकहा, कहारयणकोस आदि कथाओं में समुद्र-यात्रा एवं वाणिज्य का वर्णन किया गया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसके अतिरिक्त धनोपार्जन के अन्य अनेक साधनों का वर्णन इस साहित्य में किया गया है। उस समय व्यक्ति जुआ, चोरी, गांठ काटकर ठगी करके भी धनार्जन करते थे, किन्तु यह अच्छा नहीं माना जाता था। कुवलयमालाकहा में निर्दोष धन-प्राप्ति का उपाय बताते हुए कहा है—

"अत्थस्स पुण उवाया दिसिगमणं होइ निमित्तकरणं च।
णरवर सेवा कुसलत्तणं च माणप्पमाणेसुं॥
धातुव्वाओ मंतं च देवयाराहणं च केंसि च।
सायरतरणं तह रोहणम्मि खणणं वणिज्जं च॥
णाणाविहं च कम्मं विज्जासिप्पाइं णेयरूवाइं।
अत्थस्स सहयाइं अणिदियाइं च एयाइं॥"

दिशागमन, दूसरों से मित्रता करना, राजा की सेवा, मानप्रमाणों में कुशलता, धातुवाद, मन्त्र, देवता की आराधना, समुद्र-यात्रा, पहाड़ खोदना, वाणिज्य तथा अनेक प्रकार के कर्म, विद्या और शिल्प—ये अर्थोत्पत्ति के निर्दोष साधन हैं।

धन-प्राप्ति के लिए व्यक्ति परदेश में नीच कर्म भी कर लेता था क्योंकि वहां स्वजन न होने से लज्जा नहीं आती थी—

"उच्चं नीयं कम्मं कीरइ देसंतरे धणनिमित्तं।
सहवड्ढियाण मज्झे लज्जिज्जइ नीयकम्मेण॥" (नम्मया० गा० ६९४)

इनके अतिरिक्त धातुवाद एवं रस-विद्या द्वारा भी अर्थोपार्जन किया जाता था।

१६. **रोग एवं प्रतीकार**—रोग एवं उपचार का प्राकृत-कथा-साहित्य में प्रचुर मात्रा में उल्लेख मिलता है। समराइच्चकहा में शिरोकथा, कुष्ठ विसूचिका, मूर्च्छा, मारि, तिमिर, बधिरता आदि रोगों का उल्लेख है। शिरोव्यथा राजघरानों का प्रचलित रोग था। गुणसेन की शिरोकथा के वर्णन में कहा है—वैद्य चिकित्सा शास्त्रों को देख रहे थे तथा विचित्र रत्नलेप लगाये जा रहे थे। रोगों के उपचार के लिए आरोग्यमणि का भी उल्लेख मिलता है। चर्म रोगों को दूर करने के लिए सहस्रपाक का प्रयोग किया जाता था। कुवलयमाला में सर्प का विष उतारने के लिए नाभि में राख रगड़ना, बाईं ओर के नथुने में चार अंगुल की डोरी फिराना, मस्तक ताड़ित करना आदि उपाय बताये गए हैं। इसी तरह प्राकृत-कथा-साहित्य में अरिसा, अक्षिरोग, उदररोग, जलोदर, भगंदर, सर्पदंश आदि रोगों का उल्लेख तथा इनके लक्षणों का भी वर्णन मिलता है। रोगों के उपचार के लिए विरेचन, विभिन्न औषधियों आदि का उल्लेख प्राप्त होता है। **रयणसेहरकहा** में दाहज्वर के उपचार के लिए उचित जल-पान का उल्लेख है। इनके अतिरिक्त अन्य कथाओं में इस विषय की प्रचुर सामग्री प्राप्त होती है।

१७. **कला**—प्राकृत-कथा-साहित्य का स्थान कला की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसमें मृदंग, वीणा, वेणु, झल्लरी, डमरुक, शंख, मृदंग, ताल, ढक्का, तूर आदि वादित्रों का वर्णन पाया जाता है। संगीत कला की तरह ही चित्रकला, स्थापत्यकला, मूर्तिकला आदि लौकिक कलाओं की दृष्टि से भी यह साहित्य महत्त्वपूर्ण है। कुवलयमालाकहा, समराइच्चकहा आदि प्राकृत कथाकाव्यों में कला-सामग्री अत्यधिक मात्रा में मिलती है।

प्राकृत जैन कथाओं का देशाटन

मानव के आवागमन के साधनों का जैसे-जैसे विकास होता गया, वैसे-वैसे कथा-साहित्य भी एक देश से दूसरे देश में पहुंचता गया। जैन आचार्य भी उपदेश देने एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाते थे तथा उस स्थान की भाषा में ही उपदेश देते थे जिससे कथाएं सभी स्थानों पर जाने लगीं तथा श्रोता उन्हें श्रवण कर अपने अनुसार अन्य लोगों से कहने लगे जिससे ये कथाएं अलग-अलग भाषाओं में अनूदित होती गईं और इसी प्रकार देशाटन करती हुई विदेशों में भी पहुंचीं जहां उनका स्वागत किया गया तथा वहां स्वरूप बदल दिए जाने पर भी उनका मूल भाव ज्यों का त्यों रहा। एक ही कथा ने भिन्न-भिन्न नाम एवं रूप ग्रहण कर लिये। कई कथाएं जर्मन, फ्रेंच आदि भाषाओं में अनूदित हुईं। मेक्समूलर एवं हर्टले ने अपने अध्ययनों के माध्यम से यह सिद्ध कर दिया है कि भारतीय कथा साहित्य का यह प्रवाह निरंतर पाश्चात्य देशों की ओर प्रवाहित रहा है।

सुप्रसिद्ध यूरोपीय विद्वान् श्री सी० एच० टान ने अपने ग्रन्थ 'ट्रेजरी ऑफ स्टोरीज़' की भूमिका में स्वीकार किया है कि जैनों के कथाकोषों में संग्रहीत कथाओं एवं यूरोपीय कथाओं में अत्यन्त निकट साम्य है।

पूर्व मध्य काल में ही अनेक जैन कथाएं भारत के पश्चिमी तट से अरब पहुंचीं, वहां से ईरान, ईरान से यूरोप। अनेक प्राकृत जैन कथाओं को तिब्बत, हिन्द एशिया, रूस, यूनान, सिसली व इटली के तथा यहूदियों के साहित्य की अखिल भारतीय संस्कृति का प्रतीक माना जाना चाहिए और यथार्थतः है भी यही। श्री टाने, बल्हर, ल्यूमेन, तिस्सितौरि, जेकोबी आदि अनेक यूरोपीय प्राच्यविदों ने जैन प्राकृत कथा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साहित्य के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण गवेषणाएं की हैं। विश्व लोक कथा साहित्य के परिशीलन से ज्ञात होता है कि अनेक प्राकृत जैन कथाएं सागर-पार विदेशों में गई तथा वहां की मान्यताओं के अनुरूप वेशभूषा धारण कर उपस्थित हुई किन्तु अपनी आत्मा ज्यों की त्यों रखी। इस प्रकार अगर तुलनात्मक अध्ययन किया जाय तो हजारों प्राकृत जैन कथाएं उपलब्ध होंगी जो सामान्य परिवर्तन के साथ पाश्चात्य कथा-साहित्य में गुम्फित हैं।

सुभाषितों से भरपूर

प्राकृत-कथा-साहित्य में सुभाषितों का विशाल भण्डार भरा पड़ा है। इसमें पग-पग पर एक से एक बढ़कर सुन्दर सुभाषित बिखरे मिलते हैं। वसुदेवहिण्डी में कहा गया है कि विषयों से विरक्त व्यक्ति सुख प्राप्त करता है—

"उक्कामिव जोइमालिणि, सुभुयंगायिव पुप्फियं लतं।
विबुधो जो कामवत्तिणि,] मुयई सो॑सुहिओ भविस्सइ ॥"

—अग्नि से प्रज्वलित उल्का की भांति और भुजंगी से युक्त पुष्पित लता की भांति जो पण्डित कामवर्तिनी का त्याग करता है वह सुखी होता है।

कथाकोश प्रकरण में प्रयुक्त सुभाषित देखिये—

"अणुरूवगुणं अणुरूवजोव्वणं माणुसं न जस्सत्थि।
किं तेण जियंतेण पि मानि नवरं मओ एसो ॥"

—जिस स्त्री के अनुरूप गुण-यौवन वाला पुरुष नहीं है उसके जीने से क्या लाभ ? उसे तो मृतक ही समझना चाहिए।

णाणपंचमीकहा की प्रथम जयसेन कथा में प्रयुक्त सुभाषित—

"वरि हलिओ विहु भत्ता अनन्नभज्जो गुणेहि रहिओ वि।
मा सगुणो बहुभज्जो जइ राया चक्कवट्टी वि ॥"

—अनेक पत्नी वाले सर्वगुण-सम्पन्न चक्रवर्ती राजा की अपेक्षा गुण-विहीन एक पत्नी वाला किसान कहीं श्रेष्ठ है।

आख्यान मणिकोष में प्रयुक्त सुभाषित—

"थेवं थेवं धम्मं करेह जइ ता बहुं न सक्केह।
पेच्छइ महानईओ बिंदूहि समुद्दभूयाओ ॥"

—यदि धर्म बहुत नहीं कर सकते हो तो थोड़ा-थोड़ा करो। महानदियों को देखो, बूंद-बूंद कर समुद्र बन जाता है।

इसी तरह कुमारपालप्रतिबोध, जिनदत्ताख्यान, रयनसेहरकहा आदि कथा-ग्रन्थों में सुभाषितों का कोष भरा पड़ा है।

नैतिक आदर्शों का खजाना

प्राकृत-कथा-साहित्य उपदेशात्मक तथा नीति-प्रधान है। इसमें स्थान-स्थान पर नीति, सदाचार आदि से संबंधित उपदेश मिलता है तथा यह साहित्य नैतिक आदर्शों से भरपूर है। इसमें स्वहित के स्थान पर सर्वभूतहिताय की भावना मिलती है तथा हिंसा, चोरी आदि से विरति, सबको समान समझना आदि नैतिक आदर्शों का उपदेश प्राप्त होता है। इन सभी नैतिक आदर्शों का उपदेश कथाकार ने स्वयं न देकर पात्रों के आचरण, जीवन के उतार-चढ़ाव आदि के माध्यम से दिया है।

नाणपंचमीकहा से उद्धृत एक नीति गाथा देखिए—

"नेहो बंधणमूलं नेहो लज्जाइनासओ पावो।
नेहो दोग्गइमूलं पइदियहं दुक्खहो नेहो ॥" (१/७५)

—समस्त बन्धनों का कारण स्नेह है। स्नेहाधिक्य से ही लज्जा नष्ट हो जाती है, स्नेहातिरेक ही दुर्गति का मूल है और स्नेहाधीन होने से ही मनुष्य को प्रतिदिन दुःख प्राप्त होता है।

प्राकृत कथा संग्रह में भी कहा है—

"नीयजणेण मित्ती कायव्वा नेव पुरिसेण।"

—सज्जन पुरुषों के द्वारा नीच व्यक्ति के साथ मित्रता नहीं की जानी चाहिए।

"महिलाए विस्सासो कायव्वो नेव कइया वि।"

—महिलाओं का विश्वास कभी नहीं करना चाहिए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसी प्रकार कुवलयमाला, रयणसेहरकहा आख्यान, मणिकोष आदि कथा-काव्य अहिंसा, अचौर्य, सज्जन-संगति आदि नैतिक आदर्शों से भरपूर हैं।

इस प्रकार भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता, सामाजिक एवं नैतिक जीवन आदि का वास्तविक एवं सही ज्ञान प्राप्त करने के लिए प्राकृत-कथा-साहित्य अत्यन्त उपयोगी है। निम्नवर्गीय व्यक्ति से लेकर उच्चवर्गीय व्यक्ति तक के चरित्र का जितना विस्तृत तथा सूक्ष्म वर्णन प्राकृत कथाओं में मिलता है उतना अन्यत्र दुर्लभ है। उपदेशात्मक होते हुए भी कला का अत्यधिक समावेश है। मानव-विश्वास, देवी-देवता, वेश-भूषा, व्यवसाय आदि का विशुद्ध चित्रण इन कथाओं में ही मिलता है। इनमें जैन लोक संस्कृति के विरक्ति, करुणा, उदारता, सेवा आदि के मधुर स्वर ध्वनित होते हैं। ये प्राकृत कथाएं भूत को वर्तमान से जोड़ती हुई सीधा उपदेश नहीं देतीं बल्कि कथानक स्वयं ही अपना उद्देश्य प्रकट करते हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि प्राकृत कथा-साहित्य हर दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है तथा यह साहित्य अन्य भाषाओं के साहित्य के लिए उपजीव्य रहा है। प्राकृत कथाओं के महत्त्व को स्वीकार करते हुए विण्टरनित्स ने 'ए हिस्ट्री आफ इण्डियन लिट्रेचर' में कहा है—"जैनों का कथा साहित्य सचमुच विशाल है। इसका महत्त्व केवल तुलनात्मक परिकथा साहित्य के विद्यार्थी के लिए ही नहीं है, बल्कि साहित्य की अन्य शाखाओं की अपेक्षा हमें इसमें जन साधारण के वास्तविक जीवन की झांकियां मिलती हैं। जिस प्रकार इन कथाओं की भाषा और जनता की भाषा में साम्य है, उसी प्रकार उनका वर्ण्य विषय भी विभिन्न वर्गों के वास्तविक जीवन का चित्र हमारे सामने उपस्थित करता है। केवल राजाओं और पुरोहितों का जीवन ही उस कथा साहित्य में चित्रित नहीं है अपितु साधारण व्यक्तियों का जीवन भी अंकित है।"

प्रो० हर्टले ने 'आन दी लिट्रेचर आफ दी श्वेताम्बराज ऑफ गुजरात' नामक पुस्तक में कहा है—"कहानी कहने की कला की विशिष्टता जैन कहानियों में पाई जाती है। ये कहानियां भारत के भिन्न-भिन्न वर्ग के लोगों के रस्म-रिवाज को पूरी सच्चाई के साथ अभिव्यक्त करती हैं। ये कहानियां जन साधारण की शिक्षा का उद्गम स्थान ही नहीं है वरन् भारतीय सभ्यता का इतिहास भी हैं।"

इस प्रकार उपरोक्त विवरण, विद्वानों के विचारों तथा प्राकृत-जैन-कथा-साहित्य के विदेशों में प्रचार-प्रसार को देखने से ज्ञात होता है कि प्राकृत-जैन-कथा-साहित्य ने भारत में ही नहीं अपितु विदेशों में भी अपना गौरवपूर्ण स्थान बनाया है। इसने भारतीय साहित्य, संस्कृति, सभ्यता आदि को ही प्रभावित नहीं किया है बल्कि विदेशी साहित्य, संस्कृति, सभ्यता आदि को भी प्रभावित किया है तथा यह मात्र भारतीय साहित्य का ही नहीं, अपितु पाश्चात्य-साहित्य का भी उपजीव्य रहा है।

इस देश की भाषागत उन्नति के भी जैन मुनि सहायक रहे हैं। ब्राह्मण अपने धर्मग्रन्थ संस्कृत में और बौद्ध पालि में लिखते थे, किन्तु, जैन-मुनियों ने प्राकृत की अनेक रूपों का उपयोग किया और प्रत्येक काल एवं प्रत्येक क्षेत्र में जब जो भाषा चालू थी, जैनों ने उसी के माधमम से अपना प्रचार किया। इस प्रकार, प्राकृत से अनेक रूपों की उन्होंने सेवा की। महावीर ने अर्ध-मागधी को इसलिए चुना था कि मागधी और शौर सेनी, दोनों भाषाओं के लोग उनका उपदेश समझ सकें। बाद को, ये उपदेश लिख भी लिये गए और उन्हीं के लेखन में हम अर्ध-मागधी भाषा का नमूना आज भी पाते हैं। हिन्दी, गुजराती, मराठी आदि भाषाओं के जन्म लेने से पूर्व, इन प्रान्तों में जो भाषा प्रचलित थी उसमें जैनों का विशाल साहित्य है जिसे अपभ्रंश साहित्य कहते हैं। भारत की भाषाओं में एक ओर तो प्राचीन भाषाएँ, संस्कृत और प्राकृत हैं तथा दूसरी ओर, आज की देश-भाषाएँ। अपभ्रंश भाषा इन दोनों भाषा-समूहों के बीच की कड़ी है। इसलिए, भारत के भाषा-विषयक अध्ययन की दृष्टि से अपभ्रंश का बड़ा महत्त्व है। जैन विद्वानों ने संस्कृत की भी काफी सेवा की। संस्कृत में भी जैनों के लिखे अनेक ग्रन्थ हैं जिनमें से कुछ तो काव्य और वर्णन हैं तथा कुछ दर्शन के संबंध में। व्याकरण, छन्दशास्त्र, कोष और गणित पर भी संस्कृत में जैनाचार्यों के ग्रन्थ मिलते हैं।

—श्री रामधारीसिंह दिनकर संस्कृति के चार अध्याय, पृ० १२१ से उद्धृत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org